नालन्दा

लेखक

डा० हीरानन्द शास्त्री, एम. ए., एम. ओ. एल., डि. लिट्.,

डायरेक्टर आफ़ आर्कियोलाजी, बड़ोदा स्टेट ;

गवर्नमेंट ऐपिग्राफ़िस्ट फ़ार इन्डिया, रिटायर्ड

नालन्दा हसतीव सर्वनगरीः

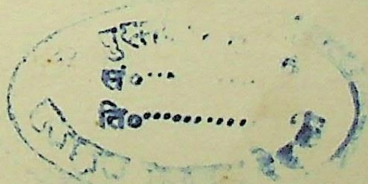




देहली,

मैनेजर आफ़ पब्लिकेशन्स

१९३८

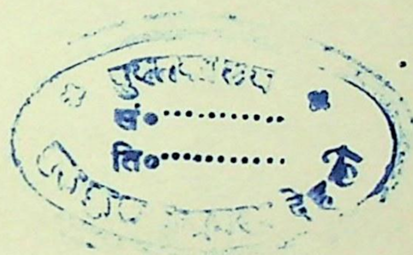


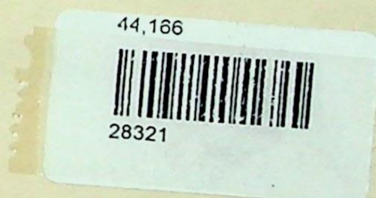
विषयसूची

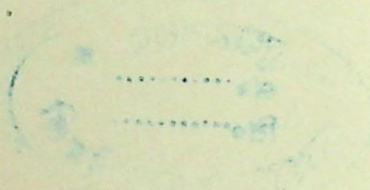
विषय	पृष्ठ
विषयसूची	अ
चित्रसूची	आ
प्राक्कथन	इ-ई
नाम और निर्वचन	१
स्थाननिर्देश	२
प्राचीन ख्याति	३
वर्तमान अवस्था	१५
मकान	१७
विहार (मोनास्टरी) नं १ . . .	१९
अन्य विहार इत्यादि	२५
मन्दिर पत्थरघट्टी	२८
चैत्य वा स्तूप	३०
अन्य वस्तुएं, मिट्टी की मुद्रा आदि . .	३३

चित्रसूची ।

विषय	पृष्ठ
(१) मिट्टी की मुद्राएं	१२
(२) मुख्य स्तूप नम्बर ३ का आकार	१८
(३) कांसे (bronze) की बुद्धमूर्त्तियां	२२
(४) देवपालदेव के ताम्रपत्र की मुद्रा और महाराज शर्ववर्मा की मिट्टी की मुद्रा	२५







प्राक्कथन

सैकड़ों वर्षों से नालन्दा समस्त भारत में प्रसिद्ध विद्यास्थान एवं पवित्र भूमि मानी जाती थी। इसकी कीर्त्ति सातवीं शताब्दी के पहिले ही पूर्वीय भूगोलार्द्ध में फैल गयी थी। बख़्तियार खिलजी के आक्रमण के अनन्तर इसकी महिमा लुप्तप्राय हो गई और अज्ञात सी रही जब तक कि पुरातत्व विभाग ने भारत सरकार की सहायता से इसके भग्नावशेषों को खोद खाद कर संसार के सामने नहीं रख दिया। अब तो इसकी कीर्त्ति फिर फैल रही है और ज्यों ज्यों इसकी प्राचीन गरिमा के चिन्ह हमारे सामने आते जाएंगे फैलती ही जाएगी। यद्यपि पुरातत्वान्वेषियों को यहां पर अपनी कार्य्यवाही का श्रीगणेश मनाए सोलह सत्रह वर्ष बीत चुके हैं, तथापि आज तक इसका पूरा पूरा एवं ठीक ठीक वर्णन कहीं नहीं छपा। पुरातत्व विभाग से एक पुस्तिका सी छापी गई है अवश्य, परन्तु वह पर्याप्त नहीं। मैंने एक बड़ा सन्दर्भ लिखा है जिसमें आद्योपान्त वर्णन किया गया है और उपयुक्त चित्र भी दिये गए हैं। यह पुस्तक भी भारतीय पुरातत्व विभाग की ओर से छापी जायगी और आशा है अनतिदूर समय में विद्वानों के समक्ष रक्खी जा सकेगी।* इसके प्रकाशित

होने के पूर्व यह उचित समझा गया है कि नालन्दा के संबन्ध में जो जो मुख्य बातें ज्ञात एवं ज्ञातव्य हैं उन्हें संक्षेप से हिन्दी भाषा में लिख दिया जाय जिससे कि इस दिव्य स्थान को और यहां से प्राप्त लेखों, मुद्राओं, मूर्त्तियों एवं अन्यान्य वस्तुओं को प्रेक्षक ठीक ठीक समझ सकें। लोगों में ऐसी पुस्तक की मांग भी बहुत है। इससे उक्त बृहत् सन्दर्भ को देखने की इच्छा भी बढ़ेगी। यदि उचित देखा गया तो हिन्दी वा हिन्दुस्तानी से अपरिचित सज्जनों के लिये आंगल भाषा में भी इसे उपस्थित कर देने का विचार है।

बडोदा।

हीरानन्द शास्त्री

ता० ५ मार्च सन् १८३५

नालन्दा

नाम और निर्वचन

नालन्दा नाम प्राय: अढ़ाई हजार वर्ष से भी पहले का है। महाबीर स्वामी के, जो जैनियों के २४ वें तीर्थङ्कर हुए हैं, एवं गौतम बुद्ध के समय में यह नाम प्रचलित था और इसी स्थान को सुशोभित करता था यह जैन और बौद्ध ग्रन्थों से प्रमाणित है। इन दोनों सम्प्रदायों के लिये यह स्थान पवित्र माना गया है। तभी तो महाबीर स्वामी ने यहां १४ चौमासे व्यतीत किये और महात्मा बुद्ध ने यहां वास किया एवं इसकी बहुत प्रशंसा भी की। गौतम बुद्ध बहुधा नालन्दा के समीप प्रावारिका-म्रवन नामक आम के पेड़ों के बाग में रहा करते थे।

इस नाम का निर्वचन क्या है यह तो ठीक ठीक ज्ञात नहीं। नालन्दा के आस पास बहुत सी झीलें हैं जिनमें से बहुत से 'नाल' निकाले जाते थे और अब भी निकाले जाते हैं। संस्कृत में नाल भिस अर्थात् कमल की जड़ को कहते हैं। यह भूमि नालों को देने वाली है। यह सम्भव प्रतीत होता है कि इसी लिये इसे नालन्दा के नाम से अङ्कित किया गया होगा। चीनी यात्री ह्युअन त्सङ्ग (Hiuen Tsang) ने जो

न+अलं+दा (=लगातार दान) की व्युत्पत्ति दी है वह केवल निदानकथा है। किसी नाग विशेष की नाम पर इसे निर्वाचित करना भी कल्पना सी ही प्रतीत होती है। इसमें कुछ सन्देह नहीं कि यह नाम 'आ' कारान्त है और इसे नालन्दा बोलना चाहिये, न कि नालन्द जैसा कई एक लोग कहते देखे गए हैं। प्राचीन ग्रंथों में, शिलालेखों वा ताम्रपत्रों पर, एवं प्राचीन मूर्तियों और मुद्राओं पर नालन्दा ही लिखा हुआ पाया जाता है और ऐसा ही बोलना उचित है।

स्थाननिर्देश

नालन्दा विहारशरीफ़ से, जो पटना जिले में उसी नाम के एक प्रान्त या सब-डिविय्यन का मुख्य नगर है, दक्षिण-पश्चिम (नैर्ऋत कोण) में प्राय: ७ मील की दूरी पर है; और राजगिर से, जो हिन्दुओं, जैनों, बौद्धों एवं मुसलमानों का एक पवित्र स्थान है, और जहां बख्तियारपुर से निकली हुई रेलवे की एक छोटी लाइन समाप्त होती है, प्राय: उतनी ही दूर उत्तर-पूर्व (ऐशान कोण) में है। अब तो उक्त लाइन पर इस नामका एक छोटा स्टेशन भी है जिससे यात्रीगणों को आने जाने में बहुत सुविधा हो गयी है।

नालन्दा हिन्दुओं के लिये तो तीर्थ स्थान नहीं हां, पास के बडगांव नामक ग्राम में एक सूर्यकुण्ड है जो हिन्दुओं का तीर्थ है। वहां सहस्रों हिन्दू स्नानार्थ

आते हैं और सायंकाल को वहां पर सूर्यास्त का दृश्य बहुत मनोहर होता है। इसी ग्राम में दोनों जैन सम्प्रदायों के, अर्थात् श्वेताम्बरों और दिगम्बरों के मन्दिर हैं जो महावीर स्वामी के मुख्य गणधर गौतम स्वामी के जन्मस्थान होने के कारण बनाये गए हैं। इसी लिये यहां चिरकाल से जैन मतानुयायी आया जाया करते हैं।

इसमें कुछ सन्देह नहीं होना चाहिये कि यह वही स्थान है जहां उक्त दोनों महापुरुषों ने निवास किया था और जिसकी कीर्ति सुदूर पूर्व यवद्वीप (जावा) एवं चीन तक फैल गयी थी और जिसका वर्णन अति प्राचीन ग्रन्थों में पाया जाता है। बाहर से आने वाले यात्रियों ने जो वर्णन किया है तदनुसार ही इसकी स्थिति है। यहां से सहस्रों लेख प्राप्त हुए हैं जिनमें यह नाम पाया जाता है और जो इसके महत्व को सिद्ध करते हैं। यह सब सामग्री बाहर से आई हुई नहीं हो सकती।

प्राचीन जैन एवं बौद्ध ग्रंथों में नालन्दा को राजगृह की एक बाहिरिका (suburb) वा पाड़ा अर्थात् 'उपनिवेश' माना है जो उक्त दोनों महापुरुषों के समय बहुत समृद्ध था और जहां अनेक धनाढ्य लोग रहते थे। इसमें सैंकड़ों बड़े बड़े मकान थे और यह स्थान लोगों से भरा रहता था। चीनी यात्री ह्युअन त्सङ्ग प्राचीन ख्याति

ने स्पष्ट लिखा है कि इस स्थान को पांच सौ सौदागरों ने दशकोटि सुवर्ण मुद्रा से मोल लेकर भगवान् बुद्ध को भेंट कर दिया था। इसीसे अनुमान किया जा सकता है कि अब से अढ़ाई हजार वर्ष पहिले इसका कितना महत्व था। इसके प्राय: ३०० वर्ष पीछे मौर्य्य सम्राट् अशोक के समय में भी नालन्दा की स्थिति में कोई न्यूनता नहीं आई होगी। तभी तो बौद्धों की तीसरी बैठक (Third Council) में जो पाटलिपुत्र में हुई थी स्थविरवाद के अनुयायियों से पृथक् होकर सर्वास्तिवादी एवं उनके साथी और ग्यारह सम्प्रदाय वाले यहां चले आये थे। इसके पश्चात् शुङ्गों के समय में भी यह स्थान प्रसिद्ध रहा होगा क्योंकि शुङ्ग राजा पुष्यमित्र का उसकी सम्बन्धिनी किसी स्त्री से, जो नालन्दा से आई थी, भेंट करने का समाचार तिब्बत के इतिहास लेखक तारा-नाथ ने दिया है। यदि यह स्थान प्रसिद्ध न होता तो इस नाम के उल्लेख की कोई आवश्यकता न थी।

इसके अनन्तर यद्यपि चौथी शताब्दी तक हमें ऐसे प्रमाण नहीं मिलते जिनसे नालन्दा की परिस्थिति पर प्रकाश पड़े, तथापि चीनी यात्री फाहियान के वर्णन से, जो भारत वर्ष में पांचवीं शताब्दी (४०५—४११ ई०) में आया था, अनुमित होता है कि उस समय यह स्थान किसी उच्च कोटि पर स्थित नहीं होगा अन्यथा वह

इसका वर्णन अवश्य करता। उसने तो केवल 'नाल' नामक एक ग्राम का उल्लेखमात्र ही किया है। किसी बिहार वा स्तूप का अथवा किसी प्रासाद वा मन्दिर का नाम तक नहीं लिया। संभव है कि इस यात्री का ध्यान इसकी ओर खिंचा ही न हो[१]। यह भी संभव है कि हूणों के आक्रमण से यहां सब कुछ अस्तव्यस्त और छिन्न भिन्न हो गया हो! यदि हम ऐसा अनुमान कर लें तो अनुचित न होगा। मुसलमानों के आक्रमण ने तो नालन्दा को नष्ट ही कर दिया। बालादित्य नामक किसी व्यक्ति द्वारा एक मन्दिर का अग्निदाह के अनन्तर जीर्णोद्धार किया जाना एक शिला लेख में लिखा है। संभव है यह अग्निदाह हूणों के समय किया गया हो वा थोड़ा उससे अर्वाचीन हो। मुसलमानी आक्रमण के समय तो इसका विध्वंस हुआ ही होगा। गुप्तसाम्राज्य के अन्तिम समय में जो हूणों के दुःखप्रद आक्रमण उत्तर भारत में हुए होंगे उनका अनुमान महाराज स्कन्दगुप्त के शिला लेख से किया जा सकता है जिसमें इतने बड़े अधिपति का पृथ्वी पर लेट कर रात काटने का उल्लेख है। इसी महाराज ने इनका पर्य्याप्त दमन भी किया था। तथापि, यशोवर्म्मदेव ने उनका

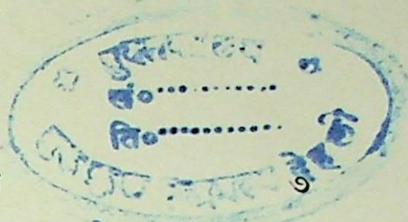
---

[१] फाहियान का 'नाल' ग्राम नालन्दा को ही सूचित करता है जैसा कि नालन्दा नाम के उपरोक्त निर्वचन से अनुमान किया जा सकता है। नालन्दा नालों का ही तो ग्राम था।

पूर्ण रूप से दलन किया और इस महत्कार्य में बालादित्य ने, जो मगध प्रदेश का शासक था, उसका हाथ बटाया था। इसी बालादित्य के समय में नालन्दा का पुनरुत्थान हुआ होगा। इस काल में नालन्दा का वैभव और ख्याति कहां तक बढ़ चुकी थी इसका ज्ञान नालन्दा से प्राप्त यशोवर्म्मा के शिला लेख से हो सकता है। इसमें लिखा है :—

यासावूर्जितवैरिभूप्रविगलद्दानाम्बुपानोल्लस-
न्माद्यद्भृङ्गकरीन्द्रकुम्भदलनप्राप्तश्रियाम्भूभुजाम्।
नालन्दा हसतीव सर्व्वनगरीः शुभ्राभ्रगौरस्फुर-
च्चैत्यांशुप्रकरैस्सदागमकलाविख्यातविद्वज्जना॥
यस्यामम्बुधरावलेहिशिखरश्रेणीविहारावली-
मालेवोर्ध्वविराजिनी विरचिता धात्रा मनोज्ञा भुवः।
नानारत्नमयूखजालखचितप्रासाददेवालया
सद्विद्याधरसङ्घरम्यवसतिर्धत्ते सुमेरोः श्रियम्॥

"नालन्दा अपने शुभ्र ऊंचे चैत्यों के किरणसमूहों से बड़े बड़े राजाओं की नगरियों को मानो हंसती है, और इसके ऊंचे प्रासादों एवं विहारों की पंक्तियां, जिसमें प्रसिद्ध धुरन्धर विद्वान् लोग वास करते हैं, सुमेरु पर्वत की, जिसमें विद्याधर रहते हैं, शोभा रखती हैं।" यह क्या ही मनोहर स्थान होगा! इसीमें उक्त राजा बालादित्य ने अपना एक जयस्तंभ खड़ा किया था जो शत्रुओं पर विजय का द्योतक था।



यह लेख हमारे अनुमान से प्राय छठीं[१] शताब्दी का है और इससे प्रकट है कि इस समय में नालन्दा हरी भरी थी।

फाहियान के पीछे ह्युअन त्सङ्ग के समय में तो नालन्दा समृद्धि की पराकाष्ठा को पहुंच चुकी थी। इतना अवश्य कहा जा सकता है कि गुप्त, मौखरि और चन्द्रवंशी राजाओं एवं आसाम के शासकों के समय नालन्दा की दशा अवश्य सुधरी हुई और उच्च कोटि की होगी। तभी तो इन राजाओं ने अपने पत्रादिक वस्तुओं के साथ अपनी अपनी मुद्रायें भेजी होंगी जो वहां से हमको बहुत संख्या में प्राप्त हो चुकी हैं।

प्रसिद्ध चीनी यात्री ह्युअन त्सङ्ग, जिसने भारत में सातवीं शताब्दी (६३०—६४५ ई०) में भ्रमण किया और जो महाराज हर्षवर्धन के समय में नालन्दा आकर बहुत समय तक रहा, यहां का उत्कृष्ट वर्णन कर गया है जिसे पढ़ कर आज की परिस्थिति को देखते हुए रोमांच हुए बिना नहीं रह सकता। उसने सब कुछ अपनी आंखों देखा लिखा है और हम भी सूक्ष्मतया उसका वर्णन यहां लिखे बिना नहीं रह सकते।

विहाराधिपति शीलभद्र ने ह्युअन त्सङ्ग को नालन्दा महाविद्यालय में प्रविष्ट होने की अनुमति दी और वह

---

१ यदि यह यशोवर्मदेव कन्नौजवाले महाराज हों तो आठवीं शताब्दी का।

बुद्धभद्र के साथ दस दिन तक चार छतों वाले मकान में ठहरा। उसके लिखे हुए वर्णन के अनुसार भिन्न भिन्न छः राजाओं ने नालन्दा में मकान बनवाये थे। ये सब विहार थे। इनके चारों ओर ईंटों का एक परकोटा या बड़ी दीवार थी। इसमें एक ही द्वार था जिससे लोग महाविद्यालय में आ जा सकते थे। इस महाविद्यालय के साथ ही आठ बड़े बड़े शालागृह (halls) थे जिनकी खिड़कियों से मेघों की नानाविध आकृतियां एवं सूर्य और चन्द्रमा की संधि (conjunction) के दिव्य दृश्य दिखाई दिया करते थे। और यहां से लोग आस पास की झीलों के मनोहर कमलों के समूहों को एवं आम के पेड़ों और अन्यान्य वृक्षों की छटा का अनुपम दृश्य देख कर अपने चित्त को शान्त करते थे। आंगन के चारों ओर बने हुए कमरों में साधु लोगों वा अध्यापकों के वासस्थान थे। "यद्यपि भारतवर्ष में असंख्य संघाराम हैं तथापि यहां का संघाराम अपनी शोभा एवं ऊंचाई के लिये सर्वोपरि विराज रहा है। यहां दस सहस्र साधु लोग निवास करते हैं, जो सब महायान के अनुयायी हैं परन्तु अठारह बौद्धागम, वेद तथा अन्यान्य आगमों का अनुशीलन करते हैं। इनमें एक सहस्र तो ऐसे महात्मा हैं जो तीस तीस विविध आगमों का प्रतिपादन कर सकते हैं, दस ऐसे हैं जो प्रायः पचास आगमों के पारंगत हैं। परन्तु शीलभद्र ही एक ऐसे

आचार्य हैं जो सब विषयों पर अधिकार रखते हैं और जो अपने श्लाघ्य गुणों के कारण सबमें श्रेष्ठ माने जाते हैं। यहां प्रति दिन प्रायः एक सौ चबूतरे या मंच बनाये जाते हैं जिन पर से महात्मा लोग उपदेश करते हैं जो सब विद्यार्थियों को अवश्य सुनने पड़ते हैं। यहां जितने साधु लोग हैं उनका आचरण सदा शुद्ध रहा है। तभी तो गत ७०० वर्षों से, जब से नालन्दा महाविद्यालय का सूत्रपात हुआ, कोई अपराधी नहीं निकला। यहां के राजा ने एक सौ ग्राम नालन्दा को दे रक्खे हैं, जिनका सब प्रकार का कर छोड़ दिया गया है। इन ग्रामों के २०० निवासी विद्यार्थियों के लिये प्रतिदिन नियत प्रमाण में चावल, दूध और माखन जुटाए जाते हैं जिससे छात्रों को किसी प्रकार की 'प्रतीच्छा' नहीं करनी पड़ती। नालन्दा में रहने वाले साधुओं की योग्यता और बुद्धि-वैचक्षण्य सुविख्यात है। इनका चाल चलन और धार्मिक जीवन निष्कलंक है। यहां सबको सच्चे हृदय से धार्मिक आदेशों का परिपालन पूर्ण रूप से करना पड़ता है। यहां रात दिन बड़े बड़े गूढ़ विषयों पर शास्त्रार्थ होते रहते हैं जिनसे क्या बूढ़े क्या जवान सब की ज्ञान वृद्धि होती है। जिनका ज्ञान केवल त्रिपिटका तक ही परिमित है उन्हें तो लज्जा से अपना मुंह छिपाना पड़ता है! इस महाविहार में भारतवर्ष के भिन्न भिन्न प्रान्तों से शास्त्रप्रेमी शास्त्रार्थ के लिये आते हैं।

परन्तु शास्त्रार्थ में भाग लेने के पूर्व उनकी परीक्षा ली जाती है। यह परीक्षा नालन्दा के द्वारपाल लेते हैं। जब तक इनके प्रश्नों का संतोषप्रद उत्तर नहीं मिलता तब तक शास्त्रप्रेमियों को शास्त्रार्थ में भाग लेने की आज्ञा नहीं दी जाती। प्रति दस लोगों के पीछे सात या आठ लोग इन द्वारपालों के कठिन प्रश्नों का उत्तर नहीं दे पाते जिससे उन्हें अपना सा मुंह लेकर पीछे हटना पड़ता है। शेष जो दो तीन उत्तीर्ण भी हो जाते हैं उन्हें भी शास्त्रार्थ में हार खाने का भय होता है। फिर भी जो उत्तीर्ण हो पाते हैं उन्हें ज्ञानवृद्धि प्राप्त करने से बहुत लाभ होता है। जिन लोगों ने अपनी विद्या, बुद्धिचातुर्य्य, कौशल और सद्‌गुणों को प्रमाणित कर दिया और अपनी विद्वत्ता को असाधारण सिद्ध कर दिया उनके नाम महाविद्यालय के 'विशिष्ट' व्यक्तियों में उल्लिखित कर दिए जाते हैं। इस विद्यालय का इतना महत्व है कि लोग प्रसिद्धि के लिये ऐसे ही कह देते हैं कि वे नालन्दा से पढ़ कर आये हैं! नालन्दा के आचार्यों ने जो पुस्तकें लिखी हैं उनकी ख्याति और महत्व एवं उनमें लिखी हुई बातों का प्रभाव प्रसिद्ध ही है।" इस वर्णन को पढ़ कर हमें 'सर्वे क्षयान्ता निचयाः सर्वमुत्पादि भंगुरम्' जैसी उक्तिओं की सत्यता का ध्यान आये बिना नहीं रह सकता।

ह्युअन त्संग के थोड़ा ही पीछे एक और चीनी बौद्ध यात्री भारतवर्ष में आया जिसका नाम ईत्सिङ्ग (I-tsing) था। यह यात्री भी नालन्दा में बहुत देर तक ठहरा। उसके लेखों से पता चलता है कि उसके समय में नालन्दा में आठ बड़े बड़े शालागृह (halls) थे और बड़े विहार में ३०० कमरे थे। वहां ३००० से अधिक लोग रहते थे। नालन्दा के महाविद्यालय को २०० से अधिक गांव उस देश के राजाओं ने चिरकाल से अक्षयनीवी अर्थात् स्थिर या लगातार वृत्ति के रूप में दिए हुए थे।

आठवीं और नवीं शताब्दी में भी नालन्दा का प्रभाव दूर दूर तक फैला हुआ था। यहां तक कि यवद्वीप (जावा सुमात्रा) के शैलेंद्रवंशीय बालपुत्र ने, जो कि वहां का तत्कालीन राजा था, अपने दूत के द्वारा बंगाल के प्रसिद्ध महाराजा देवपालदेव से पूछ कर यहां एक महा विहार बनवाया था और उसकी देख भाल के लिये एवं भिक्षुओं के खान पान, रोगियों के भैषज्य तथा बौद्धग्रंथ रत्नों के लेखनादिक कार्य वा चरु सत्रादि के कृत्यों के लिये उक्त महाराजा से यहां पांच गांव दिलवा दिये थे। पाल राजा बौद्ध धर्मके पक्षपाती थे। उन्होंने नालन्दा की सब प्रकार से रक्षा की। उनके राज्य में यहां कोई त्रुटि न रही होगी। नालन्दा

से प्राप्त मुद्राओं पर जो धर्म-चक्र-प्रवर्तन का चिन्ह मिलता है—बीच में चक्र, आस पास दोनों ओर बैठा हुआ एक एक मृग (देखो चित्र न० १)—वही इन राजाओं के शासन पट्टों पर भी मिलता है। ऐसा प्रतीत होता है कि यह चिन्ह नालन्दा महाविद्यालय का चिन्ह था जो ज्ञान प्रचार का द्योतक था। निर्भय तथा शान्ति से बैठे मृग शान्ति के सूचक हैं; उच्च पीठ पर स्थित चक्र ज्ञानसाम्राज्य का वाचक है। यह चिन्ह पहिले महात्मा बुद्ध के धर्म-प्रचार का द्योतक रहा। इस महात्मा ने पहले पहल काशी के पास सारनाथ में मृगदाव वन में अपने पांच मुख्य शिष्यों को, जिन्हें पंचभद्र-वर्गीय कहते हैं, उपदेश दिया। इसी धर्म के उपदेश को धर्म-चक्र-प्रवर्तन कहते हैं। जिस प्रकार सारनाथ में बौद्ध धर्म का प्रचार हुआ वैसे ही नालन्दा में भी हुआ। सारनाथ में तो पूर्व रूप ही था, नालन्दा में पूर्ण रूप से हुआ, न केवल बौद्ध मत का या महायान का, किन्तु सब विद्याओं का, यहां तक कि वेदों का भी पठन पाठन हुआ जिससे इस चिन्ह का होना सार्थक ही था। संभव है कि यह मुद्रा नालन्दा महाविद्यालय की 'छाप' (seal) थी जो प्रमाण पत्रों और अन्यान्य वस्तुओं पर अङ्कित की जाती थी। यह मुद्रा हमें हज़ारों की संख्या में मिली है जिससे नालन्दा में किस बड़ी संख्या में कार्यवाही का

संचार होता था इसका अनुमान किया जा सकता है।

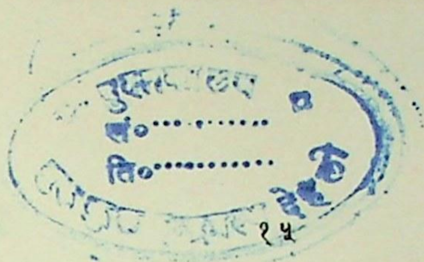
नालन्दा के पास ही **उद्दण्डपुरी** का महाविहार था। उद्दण्डपुरी में एक बड़ा भारी दुर्ग था जो पाल राजाओं का मुख्य स्थान था। इस महाविहार में महायान के मुख्य अथवा 'चरम' रूप वज्रयान का बहुत ही उग्र प्रचार होता होगा जिसके फलस्वरूप सहजयान जैसे अघोर मतका प्रादुर्भाव हुआ और वाम मार्ग का उद्दण्ड रूप दिखाई दिया। लोग 'योग' और 'भोग' के लालच से इसकी ओर आकृष्ट हुए और जहां पहिले 'योग' ही था वहां केवल 'भोग' ही प्रधान हुआ जिससे लोगों का पूरा सत्यानाश हो गया।

उद्दण्डपुरी, जिसके स्थान पर आजकल बिहारशरीफ़ की बस्ती है, बहुत प्रसिद्धि पा चुकी थी। इसी प्रसिद्धि के कारण बख़्तियार ख़िलजी ने अपने भाग्य के प्राबल्य से प्रेरित होकर यहां पर आक्रमण किया। लोग तो भोग विलास में ही रत रहा करते थे, उनसे भला लड़ाई कहां हो सकती थी? इस मन चले ख़िलजी बहादुर ने केवल मंत्र तंत्र और देवी देवताओं पर भरोसा रखने वाले महात्माओं को एकदम तलवार के घाट उतार दिया। कहा जाता है कि इसने कई सहस्र मूंड़मुंड़ाये लोगों अर्थात् भिक्षुओं को काट डाला। इस सर्वतोमुखी

हत्या का फल यह हुआ कि यहां पर जो असंख्य ग्रन्थरत्न रक्खे थे उनको पढ़ कर यह बताने वाला भी कोई न रहा कि उनमें लिखा क्या है !

यह हत्या १३वीं शताब्दी में हुई। नालन्दा उद्दण्ड-पुरी के पास ही तो थी। अतः इसका भयानक और प्रलयकारी प्रभाव उस पर भी अवश्य पड़ा होगा। नालन्दा की ऊंची ऊंची अट्टालिकाएं, दिव्य विहार और इनमें स्थित सामग्री अवश्य ही लुटेरों का शिकार बनी होगी, यद्यपि मुसलमान इतिहास लेखकों ने ऐसी किसी घटना का कोई उल्लेख नहीं किया। तभी तो वहां जो स्थान खोद कर निकाले गये हैं वहां अग्नि-दाह के द्योतक चिन्ह पाये गए। एक बड़े विहार के भग्नावशेषों की मिट्टी जली हुई, घरों की चौखटें कोयला हुई हुईं और ताम्रपत्र आगसे जले हुए निकले। अवश्य ही इस संहारकारी आक्रमण से नालन्दा फिर नष्ट भ्रष्ट हो गई होगी और तब तक इसी अवस्था में पड़ी रही जबतक कि भारत सरकार के पुरातत्व विभाग (Archaeological Survey of India) ने इसकी ओर ध्यान नहीं दिया और इसका जीर्णोद्धार नहीं किया।

मुसलमानी राज्य में बिहार एक सूबा था जिसकी उपज आईनेअकबरी के अनुसार ८३,१९६,३९० दाम थी। नालन्दा इसी सूबे के अन्तर्गत थी इसमें संदेह नहीं।



जहां हमने ईसवी सन् से प्रायः ५०० वर्ष पहिले से लेकर १३वीं शताब्दी तक नालन्दा की विविध अवस्था देखी और काल के परिणाम को देख कर विस्मय किया वहां हम यह भी देखना चाहते हैं कि अब नालन्दा की क्या दशा है। इसका सिंहावलोकन हम बड़े स्तूपपर खड़े होकर कर सकते हैं। यहां संक्षेप से वर्णन किया जाता है :— **वर्तमान अवस्था**

यहां के प्राचीन विहारों के भग्नावशेष प्रायः १६०० × ४०० फुट के विस्तार में पाए जाते हैं जहां पर कि इस समय खुदाई का काम चल रहा है। इस भाग को सरकार ने पुरातत्व विभाग के लिये 'एन्शेंट मौन्युमेंट प्रिज़र्वेशन ऐक्ट' के अनुसार अपने आधीन कर लिया है। आवश्यकतानुसार आसपास की और भूमि भी इसी तरह ली जा सकेगी। साधारण दृष्टि डालने से ही पता लग जाता है कि आस पास के खेतों में भी प्राचीन नालन्दा के खण्डहर छिपे पड़े हैं। कहीं कहीं तो ऊंचे ऊंचे टीले ही खड़े हैं और कहीं कहीं खेतों के साथ समतल हो गये हैं। अभी तक नौ विहारों के अवशेष खोदे गये हैं परन्तु पूर्णतया किसी को भी नहीं खोदा गया प्रतीत होता। पूर्व समय में प्रायः यह रिवाज था कि बहुधा एक विहार के गिर जाने पर उसके मलबे (debris) पर दूसरा विहार खड़ा कर दिया

जाता था। मुख्य विहार में, जिसे मोनास्ट्री नंबर १ कहा गया है, कम से कम आठ विहार या बस्तियों के, जो एक के ऊपर दूसरी बनाई गई होंगी, शेष पाए जाते हैं। पुरातत्व विभाग के कर्मचारियों ने बड़े यत्न से खोद खोद कर यहां के पुराने मकानों की बनावट को दिखलाया है। बौद्धशासन के अनुसार एक बिहार के गिर जाने पर उसके शेष को ढक दिया जाता था और वहां पर दूसरा विहार बना दिया जाता था। इस कार्य को बौद्धसम्प्रदाय में परिछादन की संज्ञा दी जाती है। विहारों के खण्डहर, जिनकी खुदाई हो चुकी या हो रही है दक्षिण से उत्तर की ओर पाये जाते हैं, अर्थात् राजगिर की ओर से चलकर बड़गांव वा सूरजपुर की ओर चलते हुए देख पड़ते हैं। ऐसा होना भी स्वाभाविक ही है क्योंकि नालन्दा को राजगृह की बाहिरिका वा पाड़ा ही तो बताया गया है। अवश्य ही उसी की ओर से बस्ती बनती गई होगी। अतः हम ज्यों ज्यों राजगिर की ओर खोदते जायेंगे त्यों त्यों हमें अधिक प्राचीन सामग्री मिलती जायगी ऐसी संभावना युक्तियुक्त प्रतीत होती है। यही कारण है कि विहार या मोनास्ट्री नं० १ में जितनी प्राचीन वस्तुएं निकली हैं उनसे बहुत अर्वाचीन सामग्री उससे उत्तर की ओर प्राप्त हुई है। परन्तु पत्थरघट्टी में जो सामग्री मिली है वह वहां ही की है

इसमें संदेह है। सम्भव है वहीं कहीं पास से लाई गई हो। वह पांचवीं या छठी शताब्दी की है ऐसा प्रतीत होता है।

नालन्दा में जो खण्डहर खोद कर निकाले गए हैं वे या तो मकानों के शेष हैं या चैत्य अथवा स्तूप हैं वा मूर्तियां (पूर्ण या खण्डित), लेख (पाषाणों पर अथवा ताम्रपट्टों पर), मिट्टी की मुद्राएं, मिट्टी अथवा धातु के पात्र, और धातु, मिट्टी या पत्थर की अन्यान्य वस्तुएं हैं। इन सब में जो कुछ मुख्य प्रतीत होता है या द्रष्टव्य है उसका यहां संक्षेप में वर्णन कर देना आवश्यक है।

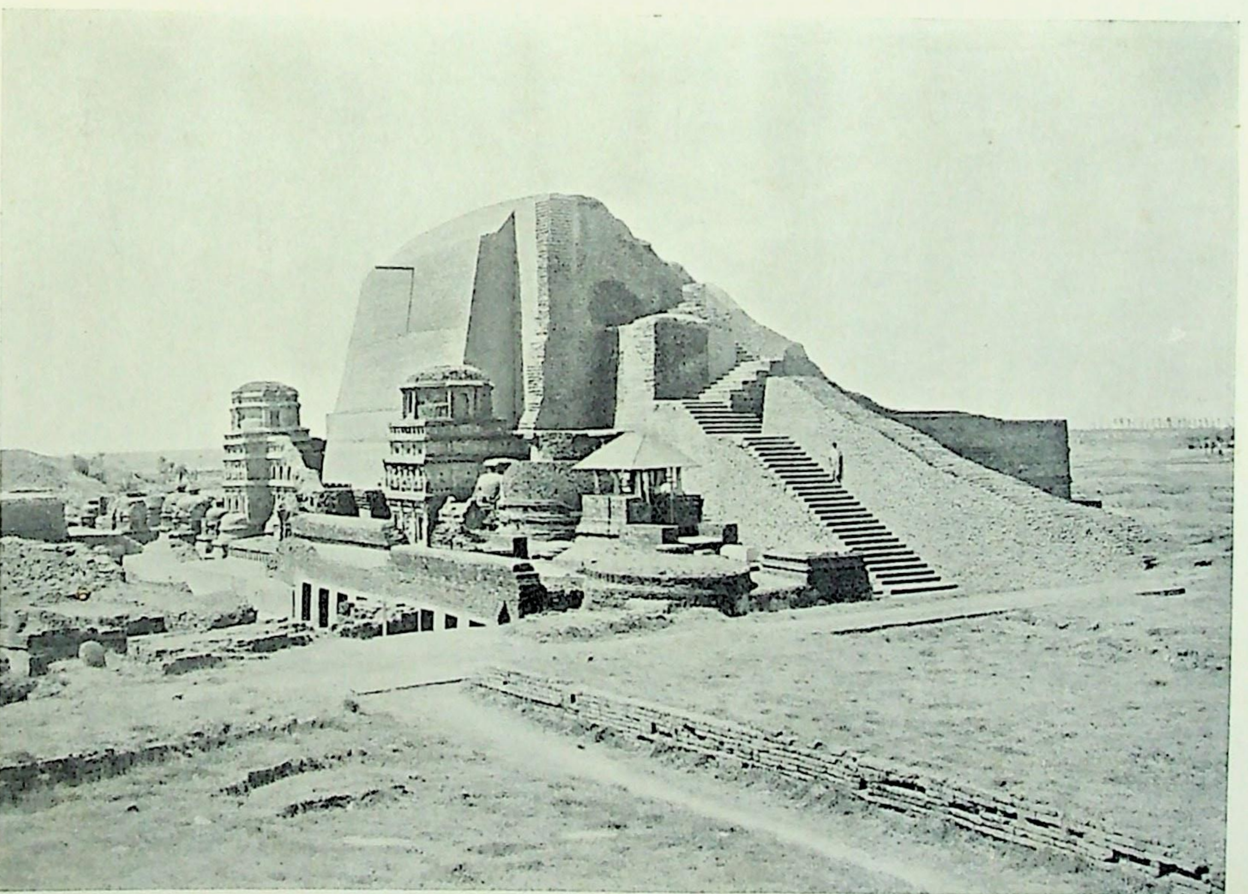
मकान (Structures)

यहां के मकान जो अब तक खोद कर निकाले गये प्रायः सब ईंटों के ही बने हुए हैं और कोई भी गुप्तकाल से पहिले का नहीं है। ये दो भागों में बांटे जा सकते हैं—एक विहार, दूसरे स्तूप वा चैत्य। जैसा कि भग्नावशेषों से स्पष्ट होता है, नालन्दा के विहार प्रायः एक ही प्रकार के हैं। तलदर्शन (plan) में वे सब समचतुरस्र (rectangular) हैं। अन्दर उनके चारों ओर कोष्ठ हैं और खुला हुआ बरामदा है। बीच में चौकोन आंगन है जिसमें एक कुआं खुदा हुआ है। बरामदा या तो बराबर की दूरी पर बने हुए स्तंभों वाला होगा या बिना छत का। बाहर की दीवार प्रायः सादी वा निरलङ्कार है, केवल सामने की ओर

प्राकार-मूल (plinth) के पास की ईंटें विशेष रूप में संस्कृत हैं। इन प्रकोष्ठों में कोई वातायन या खिड़की होती थी या नहीं इसका निश्चय नहीं क्योंकि इतनी ऊंची दीवारें नहीं मिलीं जिन में कि खिड़की की सम्भावना हो सके। सम्भव है एकान्त के लिये झरोखा वा खिड़की न लगाई गयी हो, वायु और प्रकाश के सञ्चार के लिये केवल द्वार ही पर्य्याप्त समझा गया हो। इन कमरों में दीवारों की सुटाई में कंक्रीट (concrete) की वेदिका जैसी बनी हुई होती थीं जो प्रायः चारपाई या आसन का काम देती थीं। इन दीवारों में काट काट कर आले या ताक (niches) बनाये जाते थे। उनमें मूर्तियां रक्खी जाती थीं जिनका उपयोग ध्यानादिक के लिये किया जाता होगा। इन आलों में अन्यान्य पदार्थ भी रक्खे जाते होंगे, अन्यथा इनके बहुत गहरा होने की आवश्य-कता न थी। आंगन की एक ओर प्रवेश द्वार होता था जो कि प्रायः बाहर के प्रकोष्ठ (porch) की ओर खुलता था। इसके ठीक संमुख कमरों की पंक्ति के बीच वाले कमरे में विहार की मुख्य प्रतिमा प्रतिष्ठित होती थी जिस पर प्रत्येक आगन्तुक का ध्यान पड़ता था। कहीं कहीं बरामदों में भी पीठिकाओं पर मूर्तियां स्थापित होती थीं।

स्तूपों की रचना या तो भगवान् बुद्ध के किसी शारीरिक भाग पर या किसी अन्य प्रसिद्ध बौद्धव्यक्तिके शारीरिक

चित्र २



मुख्य स्तूप नम्बर ३ का आकार

Photo.-Litho. Office, Survey of India.

धातु या अवशेष पर की जाती थी, अथवा इनका निर्माण किसी पवित्र स्थान पर स्मारक रूपमें किया जाता था। इनकी रचना अर्ध-गोलाकार (hemispherical) होती थी जिसके शिखर पर एक या अनेक छत्र होते थे। इनके चारों ओर प्रायः वेदिका या वेष्टन स्तंभ वा दीवार होती थी। बड़े स्तूप के आस पास छोटे छोटे स्तूप बना दिये जाते थे जिनमें बौद्ध भिक्षुओं के धातु रख दिये जाते थे या जो केवल उपासकों की श्रद्धा भक्ति के चिन्ह होते थे। इन चैत्यों का आकार कैसा होता था इसका ज्ञान हमें चित्र नं० २ से हो सकेगा।

बौद्धस्थानों पर खुदाई करते समय साधारणतया इन दोनों निर्माणों की ही प्रतीक्षा वा आशा की जाती है। अन्य पदार्थों की प्राप्ति संयोग से ही होती है।

विहार (मोनास्टरी) नं० १।

जैसा ऊपर लिखा गया है अभी तक नौ विहारों के शेष निकल चुके हैं। पहिले पहिल जहां खुदाई का कार्य प्रारम्भ किया गया था उसे मोनास्टरी नं० १ कहा जाता है। इस जगह कम से कम आठ भिन्न भिन्न विहारों के शेष दीख पड़ते हैं। हमें तो ऐसा प्रतीत होता है कि इनके नीचे भी इनसे प्राचीन विहारों के शेष विद्यमान हैं। पूर्व की ओर जो सब से बाहर की दीवार है उसके मूल में, जहां हमने स्वयं खोद काम

किया था, भित्तियों के 'परिछादन दिखलाई पड़े थे जो इस अनुमान को पुष्ट करते हैं। इन प्राचीनतर शेषों का खोदना कठिन कार्य है क्योंकि ऊपर के निर्माणों के टूट जाने का भय है। यदि एक स्थान को तोड़ कर पूरी खुदाई की जाय तो स्पष्ट हो सकेगा कि भग्नावशेष कहां तक पाए जाते हैं और उनमें कौन से प्राचीनतम हैं। भिन्न भिन्न काल की बस्तियों या विहारों को दिखाने के लिये पुरातत्व विभाग के अध्यक्षों ने यहां बड़ी चतुराई से मलबा काट काट कर विविध स्तरों (तहों) को दिखलाया है जिन्हें देखते ही दर्शकगण सुगमता से समझ जाएंगे। एक के ऊपर दूसरी स्तर दीख रही है। इन विहारों के निर्माताओं ने अन्यत्र सूत्रपात करने की अपेक्षा यह अच्छा समझा कि भग्नावशेषों को ही परिछादित करके उन पर मकान बना दिया जाय। नीचे वाली स्तरों में ही अच्छी अच्छी सामग्री मिली है। यह सम्भव है कि उनमें रहने वाले यहां से भाग निकले और अपनी अपनी चीज़ों को उठा नहीं ले जा सके। इसका कारण भय ही होगा और भय अग्निदाह से ही हुआ होगा। यदि यहां रहने वालों को स्थान छोड़ देने के लिये समय मिल जाता तो वे अपनी सब सम्पत्ति उठा ले जाते। "भिक्षुओं" की सब से प्रिय सामग्री उनकी पूजनीय मूर्तियों से बढ़ कर और क्या हो सकती है? वे तो सब यहां पड़ी हुई मिलीं। इससे स्पष्ट है कि भयानक

भगदड़ के कारण ही यह सब कुछ यहां धरा रह गया ; जो कुछ साधु लोग जल्दी में अपने साथ उठाकर ले जा सके ले गये। यहां कोई गृहस्थों के उपयोगी सामान तो मिले ही नहीं—जैसे कि सोने चांदी अथवा तांबे के या अन्य धातु के पात्र। मिलते भी कैसे? विहार निवासी किसी महात्मा को यदि इनकी आवश्यकता होती तभी तो वह इन्हें अपने पास रखता। उनके लिये तो मिट्टी के बर्तन ही पर्याप्त थे।

धातुमयी, पाषाणमयी और अन्य मूर्तियों को छोड़ कर यहां एक सिंहासन का पाया मिला है जो अष्टधातु का बना हुआ है। इसमें हाथी का दमन करता हुआ सिंह बना हुआ है। यह पाया किसी विशाल दिव्य मूर्ति के आसन का या किसी उच्च व्यक्ति के बैठने के पर्य्यंक वा सिंहासन का भाग होगा ऐसा प्रतीत होता है। उसके सिवाय दो तूणीर और एक राजदण्ड (sceptre) भी मिले हैं। ये तीनों वस्तुएं भी प्राय: उसी सिंहासन से सम्बन्ध रखती हैं। सम्भव है कि ये किसी विशाल राजमूर्ति के अवशेष हों जो इस आसन पर विराजमान थी। कवच और शिरस्त्राण के टुकड़ों का मिलना भी इस अनुमान को पुष्ट करता है। संभव है यह मूर्ति किसी राजा की थी जिसने इस स्थान पर विहार बनवाया था। हाथ और पांव भी

मिले हैं जो प्राय: इसी मूर्ति के होंगे। इनका निर्माणकौशल उस समय की कारीगरी का एक बहुत बढ़िया उदाहरण है। अंगुलियों का भाव और विन्यास वास्तविक है और वितर्क या आश्चर्य को जतलाता है। ये सब चीजें अष्टधातु की हैं और ढालकर बनाई हुई हैं। सम्भव है ये आठवीं वा नवीं शताब्दी में बनी हों। पाल राजाओं के राज्य में मगध में उच्च कोटि के शिल्पी हो चुके हैं यह इतिहासज्ञ जानते ही हैं। ये सब वस्तुएं नालन्दा के संग्रहालय (museum) में रक्खी हुई हैं। यहां से मिली मूर्तियां भी प्राय: बढ़िया कारीगरी की हैं। कई एक तो ऐसी हैं जो सजीव जान पड़ती हैं और जिनमें शान्ति या शान्तरस झलक रहा है (देखो चित्र नं० ३)। इन सब का वर्णन यहां नहीं किया जा सकता; यह अन्यत्र[1] किया गया है। परन्तु समुद्रगुप्त, धर्मपाल और देवपाल के ताम्रपट्टों एवं महाराज यशोवर्मदेव के समय के शिलालेख का, जो इसी विहार के खण्डहरों में से प्राप्त हुए हैं, उल्लेख कर देना आवश्यक है। भारतवर्ष के प्राचीन इतिहास के लिये यह सामग्री बहुत महत्व रखती है। देवपाल का शासन जिसे हमने स्वयं खोद कर निकाला था उसके राज्य के ३८वें वर्ष का है और जो ईस्वी सन् ८८१ के समय का

---

[1] संदर्भ (Memoir) में। देखो ऊपर पृ० ३०

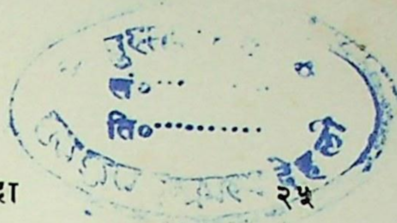
है। इन सब वस्तुओं का मिलना सूचित करता है कि यह स्थान (मोनास्ट्री नं० १) नालन्दा का मुख्य विहार रहा होगा। तभी तो ऐसे अवशेष यहां प्राप्त हुए हैं।

इस विहार के आंगन के उत्तर की ओर दो कोष्ठ हैं जो ईंटों से निर्मित हैं, और दोनों गुफा की भांति बने हुए हैं। इनका निर्माण **गया** से अनति दूर **बराबर** की पहाड़ी पर चट्टान काट कर जो गुफाएं बनाई हुई हैं उनके तुल्य है। पश्चिम वाले कोष्ठ का द्वार तो प्राय: बन्द है, केवल ऊपर से ही खुला है, परन्तु पूर्व वाले कोष्ठ का द्वार पूरा खुला है। इसका ऊपर का भाग देखने योग्य है। ईंटें बढ़ा बढ़ा कर चुनी गई हैं और इनकी चिनाई (corbelling) शोभा को बढ़ाती है। साथ वाले कोष्ठ का द्वार भी ऐसा ही है। इन दोनों की छतें कमानीदार। (vaulted) हैं। ये दोनों विशेषताएं असाधारण हैं और मुसलमानी इमारतों से कहीं पहिले की हैं।

जैसा ऊपर लिख आये हैं इस विहार के स्थान पर बहुत सी बस्तियां रह चुकी हैं। ऊपर से चलें तो प्राय: दो फुट नीचा काटने से दूसरी स्तर या तह मिलेगी और तीन फुट नौ इञ्च और गहरा काटने से तीसरी। इस स्तर में ऊपर से छ: फुट नौ इंच पर एक नाली है

जिसका पानी आंगन में ही गिरता है। इसी प्रकार काटते जायें तो क्रमश: चौथी, पांचवीं, छठी, सातवीं तहें (strata) मिलती जायंगी और स्यात् इनसे और पुरानी भी।

इस विहार के पूर्वी भाग के मध्य में एक कोष्टक है जिसमें पहले पूजागृह होगा जैसा कि विहारों में होना उचित है। यहां मुख्य पूजनीय वस्तु भगवान् बुद्ध की विशाल मूर्ति थी जिसका नीचे का भाग अब भी विद्यमान है। मूर्ति भूमिस्पर्श मुद्रा में बनी होगी और सुधामयी (stucco) होगी ऐसा उसके वर्तमान खण्डों से प्रतीत होता है। इस भाग के सामने के बरामदे में बहुत सी मूर्तियां रक्खी हुई होंगी जिनके भग्नावशेष अब भी विद्यमान हैं। दक्षिण कोण में जो पाषाण की मूर्ति है वह खण्डित होने पर भी दर्शनीय है। यह मूर्ति त्रैलोक्यविजय की है जो लेटे हुये शिव और पार्वती दोनों पर खड़ी है। इसका इस प्रकार खड़ा होना बतलाता है कि बौद्ध सम्प्रदाय ने अपने देवी देवताओं को हिन्दू वा ब्राह्मण सम्प्रदाय के देवताओं से श्रेष्ठ माना था। इस "मन्दिर" या पूजा स्थान के ठीक संमुख विहार का प्रवेश-द्वार था जिसके शेष विद्यमान हैं। सीढ़ियां बहुत अच्छी बनी हुई हैं। इसी भाग में देवपालदेव का ताम्रपट्ट मिला था। यहीं पर जो द्वारप्रकोष्ठ (porch) है उस



की उत्तर एवं दक्षिण की दीवार के आलों (niches) में तारा भगवती की मनोहर मूर्तियां हैं जिनका रंग उन्हें खोद निकालने के समय सर्वथा अम्लान और नवीन ही प्रतीत होता था। अब इन मूर्तियों को ईंटों से ढांप रक्खा है।

बाहर की दीवार चारों ओर बहुत सुन्दर चिकनी ईंटों से बनी है जिनकी जुड़ाई दीख ही नहीं पड़ती। प्रत्येक ईंट दूसरी से एक होकर सटी है, सुधा लेपादि दीखता ही नहीं।

इस विहार से सटा हुआ दक्षिण पश्चिम (नैर्ऋत कोण) की ओर एक और विहार जैसा निर्माण है जहां से बहुत सी मूर्तियां निकली थीं और जो स्यात् भिषक्शाला रही हो जैसा कि उसके आंगन में बने हुए कई एक चूल्हों से अनुमित होता है। इसमें भी एक बहुत अच्छा कुआं है। यहां धान भी मिले थे जो भण्डारे के सूचक हैं।

अन्य विहार इत्यादि

यहां से यदि हम उत्तर की ओर चलें तो अन्यान्य विहारों के शेष दिखाई पड़ेंगे जो एक दूसरे से सटे हुए हैं। विहार (मोनास्टरी) नं० १ के उत्तर की ओर एक छोटा सा कुट्टिम वा पक्का किया हुआ मार्ग है। उसके आगे कई एक विहारों के खण्डहर हैं। अन्तिम विहार में से बहुत सी धातु मूर्तियां मिली हैं। जो प्रायः दसवीं शताब्दी की बनी हुई हैं। इस विहार के

आगे भी कोई और विहार था या नहीं यह नहीं कहा जा सकता। इसके थोड़ा आगे चल कर एक प्राकार (enclosure) है जिसमें महात्मा बुद्ध की भूमिस्पर्श मुद्रा में बैठी हुई एक बृहत्काय पत्थर की मूर्ति है जो प्रायः पूर्ण है। यह उस अवस्था की द्योतक है जिसमें कि सिद्धार्थ को ज्ञान प्राप्त हुआ था। ज्ञान प्राप्ति के पूर्व जब ये महात्मा पलथी मार कर बैठे तब इन्होंने दृढ़ संकल्प कर लिया था कि यहां से तबतक नहीं उठेंगे जबतक 'बोधि' या पूर्ण ज्ञान प्राप्त न हो। भूमि को स्पर्श करते हुए इन्होंने कहा था कि "हे भूमि! यदि मैं पापी नहीं हूं तो मैं इस ज्ञान को प्राप्त करूं। तू मेरे पुण्य और पाप को देखने वाली है।" इस दृढ़ वा वज्र संकल्प के कारण इस आसन को वज्रासन भी कहा जाता है। अब इस बुद्ध मूर्ति को 'तेलिया भण्डार' या 'तेलिया बाबा भैरव' कह कर पूजा जाता है। जिन लोगों के बच्चे दुबले पतले होते हैं वे यहां आकर चढ़ावा चढ़ाते हैं जिससे उनकी सन्तान भी इसी 'बाबा' जैसी मोटी हो जाय! इस प्राकार के कुछ दूर बाहर बुद्ध भगवान् की एक और पाषाण मूर्ति है जिसे लोग 'ढेलुआ महाराज' के नाम से पूजते हैं। इस मूर्ति के पास ही बहुत से ढेले रक्खे हुए हैं। लोग उन ढेलों से इसे पीटते हैं कि उनसे डर कर ढेलुआ बाबा परमात्मा के पास जाय और पुकारे कि 'इन

"अर्चकों" की मनोकामना पूरी करो नहीं तो ये मुझे और पीटेंगे' !!

इस मूर्ति के ऊपर बुद्ध के मुख्य चेले **सारिपुत्र** और **मौद्गलायन** की एवं दो मुख्य बोधिसत्व, **अवलोकितेश्वर** और **आर्य मैत्रेय** की मूर्तियां बनी हुई हैं जो भगवान् बुद्ध के आसपास खड़ी हैं। इन चारों मूर्तियों के नाम भी उनपर लिखे हुए हैं। साथ ही बौद्धमत का मूल-तत्वद्योतक श्लोक भी लिखा हुआ है जिसे **अश्वजित्** ने **सारिपुत्र** को सुनाया था और जिसमें सूक्ष्म रूप से गौतम बुद्ध द्वारा प्राप्त किए गए ज्ञान का उल्लेख है। यह श्लोक पाली भाषा में है :—

ये धम्मा हेतुप्पभवा हेतुं तेसं तथागतो आह।
तेसं च यो निरोधो एवं वादी महासमणो ॥[1]

इसका भावार्थ है "जो धर्म या भाव किसी कारण से उत्पन्न होते हैं; उनके कारण क्या हैं; और उन सब को कैसे रोका जा सकता है; यह सब कुछ बुद्ध ने बतला दिया है।" इस प्राकार के पूर्व की ओर खेत में खड़ी

---

[1] इस श्लोक का संस्कृत रूप यह है :—

ये धर्मा हेतुप्रभवा हेतुन्तेषां तथागतो ह्यवदत्।
तेषाञ्च यो निरोध एवं वादी महाश्रमणः॥

यह श्लोक बहुत स्थानों में लिखा मिलता है।

हुई पत्थर की एक विशाल मूर्ति है जो बौद्ध देवी मारीची की है। यह आलीढ मुद्रा में खड़ी है और सुन्दर है।

मन्दिर पत्थरघट्टी

विहारों के शेषों के साथ ही एक मन्दिर के भग्नावशेष हैं जिन्हें लोग पत्थरघट्टी के नाम से पुकारते हैं। इन खण्डहरों से प्रतीत होता है कि यह मन्दिर एक दिव्य निर्माण रहा होगा। राजा बालादित्य ने नालन्दा में एक रमणीय प्रासाद बनवाया था और उसमें भगवान् गौतम बुद्ध की एक सुन्दर प्रतिमा स्थापित की थी ऐसा ऊपर वर्णित महाराजा यशोवर्म्मदेव के शिलालेख से अनुमित होता है। सम्भव है कि यह सामग्री उसी प्रासाद की हो ; इसमें संशय नहीं कि यह सामग्री गुप्त काल से बहुत पीछे की नहीं है।

पत्थरघट्टी किसी मन्दिर का निचला भाग (basement) है। तलदर्शन में यह समचतुरस्र है। इसका प्रवेशद्वार पूर्व को है जहां छोटी छोटी सीढ़ियां बनी हुई हैं। इसमें पत्थर की उत्कीर्ण पट्टियां (panels) जिनकी संख्या २११ के लगभग है बहुत मनोहर हैं। ये सब कणपीठ वा उपष्टंभ (base) के बाहर ही लगी हुई हैं और एक जैसे अन्तर पर सौष्ठव से रक्खी हुई हैं। इन अररियों के बीच में जो चौकोन स्तंभ (pilasters) हैं उनपर कुम्भ-पल्लव (pot and foliage) का आलेख है

और इन पर त्रिदल वृत्तखंड (trefoil arch) बने हुए हैं जिनमें कई एक नोकदार (pointed) हैं। ये सब पत्थर के ही बने हुए हैं; कई एक पूर्ण हैं परन्तु बहुत से टूटे हुए हैं। भग्न अररियां ईंटों से बना दी गई हैं जो अच्छी ही दीख पड़ती हैं। ये भिन्न होती हुई भी कारीगरी से बनी हैं। कुछ अररियां ऐसी भी हैं जो अधूरी हैं। इस उपष्टंभ का शृङ्ग (cornice) चैत्यों के आकारों से एवं हंसों के चित्रों से सुशोभित है जिनके बीच में जहां तहां विविध पक्षियों के चित्र भी बने हुए हैं। पट्टियों पर कई प्रकार के चित्र खचित हैं जो देखने योग्य हैं। कणी (moulding) भी प्रशंसनीय है। बहुत से तो मिथुन वा जोड़े के रूप में ही बनाये हैं जिनका आलेखन शिल्पशास्त्र के विधान के अनुकूल है। ये मिथुन स्त्री पुरुष के शृङ्गाररस-पूरित कई प्रकार के अंगविन्यासों के आलेखन हैं। कई एक चित्र किन्नरों के हैं; कई एक ज्यामिति से सम्बन्ध रखते हैं। ऐसे भी आलेख हैं जो शिव और पार्वती के चित्र प्रतीत होते हैं। कई एक गजलक्ष्मी के हैं। इन आलेखों में अग्नि और कुबेर के चित्र भी बने हुए हैं। उत्तर के प्राकार में एक ऐसी अररी है जिसपर कछुए की कहानी का चित्र है। कछुए ने मुंह में लकड़ी पकड़ी है जिसे दो हंस अपनी २ चोंच में पकड़ कर उड़े जा रहे है। नीचे बालक दिखाये गये

हैं जिनका हल्ला सुनकर कि 'यह कछुआ गिरे तो हम खा जायें, कछुआ कहता है 'भस्म खाओ' और यह कहते ही नीचे गिर पड़ता हैं ! यह कथा पंचतंत्र में दी है और बुद्ध की जन्म कथा 'कच्छप जातक' से सम्बद्ध है ।

इन सब पट्टियों में षट्कोण का आलिख एवं आधे खुले द्वार का चित्र बढ़िया कारीगरी के उदाहरण हैं । षट्कोण के सूत्रपात वाले चित्र द्योतित करते हैं कि नोकदार वृत्त खंड के सदृश ऐसे चित्र भी मुसलमानों के आगमन के कहीं पूर्व भारत के शिल्पी जानते थे, और ऐसा मान लेना कि मुसलमान कारीगरों ने ही इस देश के शिल्पियों को इनका बनाना सिखाया था भ्रान्त है । ऐसे ही अन्यान्य आलिख हैं जो देखते ही बनते हैं । पूर्वीय भाग के उत्तर की ओर एक लेख भी है जो गुप्त काल के थोड़ा ही पीछे का प्रतीत होता है । इस पत्थरपट्टी के ऊपर पत्थरों के बड़े बड़े खण्ड हैं जिन पर अर्वाचीन ब्राह्मी लिपि के अक्षर खुदे हैं । यह कारीगरों के सांकेतिक चिन्ह प्रतीत होते हैं ।

चैत्य वा स्तूप

इन निर्माणों अर्थात् विहारों के पश्चिम में चैत्य वा स्तूप बने हुए हैं । इस ओर की सारी भूमि स्तूपों से भरी हुई है । विहार (मोनास्टरी) नं० १ के पश्चिम को जैसे एक विशाल स्तूप खड़ा है वैसे ही तेलिया भण्डार के समीप भी है यद्यपि इसका उद्घाटन नहीं किया गया । मोनास्टरी नं० १ के पास वाले स्तूप को तो

पूरी ही देख भाल कर ली गई है। इसके केन्द्र की परीक्षा भी ले ली गई है। यह कोई स्मारक सा निर्माण ही होगा क्योंकि इसके अन्दर से कोई "धातु" नहीं निकला। सम्भव है कि यह उस स्थान पर बनाया गया हो जहां गौतम बुद्ध ने तीन मास ठहर कर धर्मोपदेश किया था। यह सारा ईंटों का ही बना है। इस एक ही निर्माण को देखने से पता चल जाता है कि यहां पर कैसे कैसे आच्छादन बनाए गए। पहिले यह स्तूप बहुत बड़ा नहीं था। जैसे ही यह जीर्ण हो गया या टूट गया वैसे ही इसे छादित करके ऊपर एक नया स्तूप बना दिया गया। इस प्रकार इस स्तूप के पांच छ: बार छादित होने के चिन्ह मिलते हैं। इसके चारों ओर चबूतरे से बने हुए हैं जो इसको सहारा देते हैं। भिन्न भिन्न समयों की सीढ़ियां भी निकाली गई हैं और रक्षित की गई हैं। इस स्तूप की चोटी पर चढ़ कर कमलों से भरी झीलों के सहित सारी नालन्दा का मनोहर दृश्य दीख पड़ता है। आंख राजगिर तक दौड़ जाती है और प्राचीन समय की झलक देख लेती है। इस स्तूप के नैऋत कोण में बहुत सी गुप्त राज्य के पिछले समय की बनी हुई महात्मा गौतम बुद्ध की सुधामयी मूर्तियां हैं जो उनकी भिन्न भिन्न अवस्थाओं की परिचायक हैं। इस स्तूप के आंगन में बहुत से छोटे छोटे स्तूप बने हुए हैं जिनमें

से कई तो एक दूसरे के ऊपर ही बना दिये गये हैं। आच्छादनों से ज्यों ज्यों बड़े स्तूप का आकार बढ़ता गया त्यों त्यों उसका आंगन भी विस्तीर्ण होता गया। इससे कई एक छोटे स्तूप नीचे ही दब गए परन्तु अब वे खोद निकाले गए हैं। यहां पर अब तीन भिन्न भिन्न स्तरों को अच्छी प्रकार देख सकते हैं। मोनास्ट्री नं० १ के कोने पर जो एक विहार (भिषकशाला ?) हमने निकाला था उसके आंगन से निकली हुई एक पक्की नाली (drain) अग्निकोण से इस स्तूप के आंगन में आ गिरी है। इससे स्पष्ट है कि यह स्तूप उस विहार से पीछे ही बना होगा।

इस स्तूप के पूर्व और दक्षिण को या अग्निकोण में महायान के मुख्यप्रचारक नागार्जुन की एक भव्य पाषाण मूर्ति है यद्यपि वह थोड़ी सी खण्डित है। यह एक छोटे जैसे मन्दिर में विराजित है। इस स्तूप के ईशान कोण में खड़े हुए बोधिसत्व अवलोकितेश्वर की एक अति दर्शनीय प्रतिमा है। इसके पश्चिम में कई एक छोटे स्तूपों के बीच में से चौकोन ईंटें निकाली गई हैं जिनपर बुद्ध मत का प्रसिद्ध सूत्र प्रतीत्यसमुत्पाद या निदान सूत्र लिखा है। यह गुप्त राज्य के समय की लिपि में लिखा है और संस्कृत में इसकी टीका भी दी हुई है। ऐसी पूरी टीका पहिले नहीं मिली थी। यह

सूत्र भगवान् बुद्ध ने जो ज्ञान प्राप्त किया था उसी का उल्लेख करता है।

यहां से उत्तर की ओर चलें तो बहुत से छोटे छोटे पत्थर के स्तूप दीखेंगे जिनमें से कुछ एक कन्नौज के महाराजा महेन्द्रपाल के समकालीन हैं। उन पर उस यशस्वी शासक के समय के लेख भी हैं जो बतलाते हैं कि नालन्दा उनके राज्य के अन्तर्गत ही थी। इन छोटे छोटे स्तूपों के पश्चिम में कुछ बड़े बड़े ईंटों के निर्माण हैं। एक दो में महात्मा बुद्ध की वज्रासन वाली गच्च की मूर्तियां भी हैं जो बड़ी सावधानी से निकाली गई हैं। इस स्थान में अभी और बहुत सा खुदाई का काम अधूरा पड़ा है और धीरे धीरे किया जा ही रहा है।

अन्य वस्तुएं, मिट्टी की मुद्रा आदि

इन निर्माणों की खुदाई में अनेक चीजें प्राप्त हुई हैं जो अब नालन्दा के संग्रहालय में संरक्षित हैं। ये सब प्राचीन भारत के इतिहास के लिये परम उपयोगी सामग्री है जिसका बड़े ध्यान से अध्ययन किया जाना चाहिये। ताम्रपट्ट, शिलालेख एवं मूर्तियों का सिंहावलोकन ऊपर कर ही लिया है। अन्यान्य वस्तुएं जो यहां प्राप्त हुई हैं उनका सविस्तर वर्णन अन्यत्र ही किया जा सकता है। यहां तो दिग्दर्शन ही कराना हैं; अन्यथा इस छोटी पुस्तक का आकार एवं मूल्य भी बढ़ जायेगा जिससे सर्व साधारण के लिये इसकी उपयोगिता में बाधा पड़ेगी।

तथापि यहां पर हम मिट्टी की मुद्राओं का वर्णन किये बिना नहीं रह सकते। ये यहां से बड़ी संख्या में निकाली गई हैं और विविध प्रकार की हैं। कई ऐसी हैं जो राजा महाराजाओं की भेजी हुई हैं। कई बड़े बड़े लोगों या अधिकारियों से सम्बन्ध रखती हैं; बहुत सी विहारों से और अग्रहारों से (दान किए हुए गांव को अग्रहार कहते हैं)। कुछ एक जानपदों अर्थात् म्युनिसिपल या ज़िलाबोर्डों से भेजी हुई हैं। इन पर के लेख सातवीं शताब्दी के अक्षरों में हैं। ये सूचित करती हैं कि सातवीं शताब्दी के लगभग, जब कि ये काम में आईं, भिन्न भिन्न स्थानों में, जहां से ये भेजी गई थीं, लोगों ने अपने अपने जानपद वा म्युनिसिपल बोर्ड (Municipal Board) बनाये हुए थे जो स्यात् आजकल के बोर्डों के सदृश ही कार्यवाही करते थे। इन जानपदों में कुछ ऐसे भी थे जो नालन्दा के आधीन थे। कई एक मुद्राएं भिन्न भिन्न विद्वानों की भेजी हुई हैं। बहुत सी तो नालन्दा महाविहार ही की हैं जो महाविद्यालय के प्रमाण पत्र के समय काम में आती होंगी। इतिहास के लिये राजा महाराजाओं की मुद्राओं की बहुत उपयोगिता है। इनमें गुप्त राजाओं की, मौखरि नरेशों की, महाराज हर्षवर्धन की, प्राग्ज्योतिष या आसाम के राजाओं की एवं अन्यान्य भूमिपालों की मुद्राएं बहुत ही महत्व की हैं। गुप्त नरेशों की मुद्राएं

चित्र ४

मूल ८$\frac{1}{2}$ इंच ऊंचा



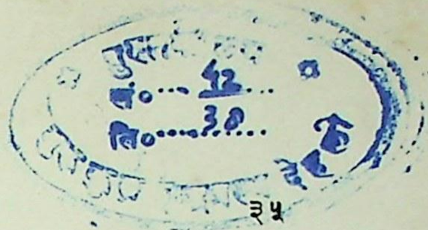
देवपाल देव के ताम्रपट्ट की मुद्रा

मूल ६ इञ्च ऊंचा



महाराज शर्ववर्मा की मिट्टी की मुद्रा

Photo.-Litho. Office, Survey of India.



उनकी वंशावली पर बहुत प्रकाश डालती हैं। कई एक बहुत कारीगरी से बनी हुई हैं जैसे महाराज मौखरि शर्ववर्म्मा की मुद्रा (देखो चित्र नं० ४)। इनमें ऐसी भी मुद्राएं हैं कि जिन पर के लेख गुप्त राजाओं के सिक्कों की भांति वृत्तों या छन्दों में लिखे हैं। ये मुद्राएं पत्रों के साथ बांध कर भेजी जाती थीं। इनको बांधने के लिये रस्सी या ताड़ के पत्ते काम में लाये जाते होंगे ऐसा इन पर के चिन्हों से अनुमित होता है (देखो चित्र नं० १)। आज कल जो काम लाख से लिया जाता है वही पहिले मिट्टी से लिया जाता था। ये सब मुद्राएं सांचे (mould) से ली हुई हैं परन्तु ऐसे सांचे स्यात् दो तीन ही मिले हैं। नालन्दामहाविहार की मुद्रा का, जो सहस्रों की संख्या में मिल चुकी है, अभी तक कोई सांचा नहीं मिला।

ऐसी मुद्राएं, जो तीर्थ स्थानों पर भेंट चढ़ाई जाती होंगी या प्रसाद की भांति दी जाती होंगी, यहां बहुत सी मिली हैं। ये भिन्न भिन्न आकार की हैं। कइयों को तोड़ने से उनके अन्दर उपरोक्त बौद्ध मन्त्र (ये धर्मा इत्यादि) की छाप मिलती है। ये ठोस स्तूप के आकार की हैं। बहुत सी अन्य मुद्राएं भी मिली हैं जिनका रूप स्तूपों जैसा है। इन पर भी यही मन्त्र लिखा है। साथ ही दो मुख्य बोधिसत्वों, मैत्रेय और अवलोकि-

तेश्वर की सुन्दर प्रतिमाएं खचित की हैं अथवा स्तूपों के आकार बना दिए हैं।

ऊपर संक्षेप में नालन्दा का वर्णन किया गया है जिस से पाठक नालन्दा के महत्व को भली भांति समझ सकेंगे और इस दिग्दर्शन से इस पुस्तक के मुखपृष्ठ पर उद्धृत प्रतीक 'नालन्दा हसतीव सर्वनगरीः' की सत्यता का अनुभव भी कर लेंगे।

इति शम्